ISSN 2581-9917

जबान के कच्चे

ज्योति*

मुल्ला नसीरुद्दीन की कहानियाँ जीवन में बेहतरीन सबक लेकर आती हैं। एक कहानी के मुताबिक एक बार मुल्ला और उनका बेटा किसी गाँव में गए और साथ में अपना गधा भी ले गए। लौटने पर मुल्ला ने देखा कि कमजोर बेटे की हालत बिगड़ गई है तो बेटे से विनती कर उसे गधे पर बिठा दिया और स्वयं साथ-साथ पैदल चलने लगे। कुछ दूर जाने पर ही लोगों ने हाय तौबा मचाते हुए कहा कि न जाने आजकल के नौजवान लड़कों को क्या हो गया है? खुद बेशर्मी से गधे पर बैठा है और पिता को इस धूप में पैदल चला रहा है। मारे ग्लानि के बेटा तुरंत उतर गया और पिता को गधे पर बैठने का आग्रह किया। पिता ने यह स्वीकार कर लिया।

इसके बाद कुछ दूरी पर कुछ लोग मिले तो मुल्ला को इस धूप में बेटे को पैदल चलाने के लिए कोसने लगे। मुल्ला को यह बात बुरी लगी और उसने बेटे को भी गधे पर अपने साथ बिठा लिया। इस पर लोग दोनों को ही बेशर्म ठहराने लगे कि न जाने कैसा दिल है दोनों का! इस भरी गर्मी में पिता-पुत्र गधे की जान लेने पर तुले हुए हैं। यह सुनकर पिता-पुत्र दोनों ही गधे से उतर पैदल चलने लगे। कुछ समय बाद, जब दोनों को यूँ गधे के साथ पैदल चलते हुए देखा तो लोगों ने उन दोनों का मजाक उड़ाया कि गधे के होते हुए भी ये दोनों बेवकूफ पैदल जा रहे हैं, वह भी इस चिलचिलाती गर्मी में।

लोग कुछ न कुछ कहेंगे। यह हम पर निर्भर करता है कि हम लोगों के कहे हुए से कितने प्रभावित होते हैं। अगर हम अपने जीवन और उसकी शैली को लोगों के कहे अनुसार बना लेंगे तो इसकाएक अर्थ यह हुआ कि हम वास्तव में अपनी मूल इच्छा और प्रकृति के अनुसार व्यवहार नहीं कर रहे हैं। और जीवन में अपने स्व को खो देना जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना है। एक पुरुष किसी घटना पर फूट-फूट कर रोना चाहता है और समाज उसे यह कहकर रोने नहीं देता कि मर्द नहीं रोते तो वास्तव में यह उस व्यक्ति के मूल मानवीय भाव को मार देना होगा।

इसका एक दूसरा पक्ष भी है। वास्तव में पैने दांतों के बीच में फंसी जीभ का काम स्वतंत्र है। वह जब चाहे कुछ भी कहने के लिए आजाद है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपनी जबान का इस्तेमाल कैसे करते हैं। यदि हमने क्रोध चुना है तो क्रोधी शब्द मुंह से बेलगाम बहेंगे और यदि करुणा चुनी है तो बुद्ध बनना बहुत मुश्किल नहीं है। इतिहास के गर्भ मेंऐसी बहुत-सी कहानियां छुपी हुई हैं जहाँ लोगों ने बेकार और खूब दोनों कहा है। कहना जब सत्ता बन जाए तब यह बहुत मुश्किलों के साथ उभरने लगता है।

लोग शब्द बहुवचन होने का एहसास लिए हुए है। यह इतना प्रचलित और प्रतिदिन इस्तेमाल होने वाला शब्द है जिसका महत्त्व शायद ही कम हो। विशेषरूप से लोकतांत्रिक देश में लोकतांत्रिक संविधान के अर्थ को 'लोग' शब्द बहुत प्रासंगिक बनाता है। पर क्या यह वास्तव में इतना महत्त्व लिए हुए है अथवा सामाजिक अर्थ में इसके अर्थ के छींटे कहीं-कहीं निशान भी छोड़ देते हैं, जैसे प्रश्न पर सोचना अनिवार्य प्रक्रिया है। इसमें कोई शक ही नहीं कि संवैधानिक स्तर पर 'लोग' शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। 'हम भारत

* स्वतंत्र लेखिका

के लोग' कहने पर हम उसी वक्त भारत गणराज्य के नागरिक में तब्दील हो जाने वाले व्यक्ति बन जाते हैं। एक जनता और उसका देश बनकर उभर आते हैं। हमारे एक नागरिक के रूप में अधिकार और कर्तव्य दोनों ही तय हो जाते हैं। पर समाज में जब हम किसी के बारे में अपनी आम राय स्थापित करते हैं तो उसके अर्थ अलग होते हैं, विशेषरूप से तब जब हम किसी की आलोचना के नकारात्मक पक्ष पर ही अधिक बल देते हैं।

स्त्रियों पर लोग क्या कहेंगे की पंक्ति अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। जेंडर बदलते ही लोगों के विश्वास, अनुमान, समझ, कहानियाँ रचने की संभावना अथवा रसदार गॉसिप में अंतर आ जाता है। इतना पुरुष के मामले में नहीं आता। ऐसा नहीं है कि पुरुष 'लोग क्या कहेंगे' की प्रक्रिया का विषय नहीं बनते। वे भी बनते हैं और अक्सर उन्हें भी उन सभी बातों और तर्कों से दबाने का प्रयास किया जाता है जैसा कि किसी स्त्री को लेकर किया जाता है। पर स्त्रियों के संदर्भ में यह कई गुना ज्यादा है। इसके उदाहरण साहित्य में बहुत हैं। कितनी ही मार्मिक स्त्री कथाएँ हैं जिन्होंने 'लोग क्या कहेंगे' के डर अपनी जान गंवाई है। हिंदी के एक अनुपम उपन्यास 'धरती धन न अपना' की नायिका ज्ञानो के जीवन का अंत साहित्य में बहुत मार्मिक अंत है। वह गाँव के कथित निम्न जाति के व्यक्ति से प्रेम करती है। वह इस दौरान गर्भवती हो जाती है। जब इसका पता ज्ञानो की माँ को चलता है तब वह अपनी ही बेटी को लोकलाज के डर से जहर देकर मार देती है। जहर देने के बाद वह बाहर आकर विलाप करती है। त्रासदी यह है कि गाँव के अन्य घरों को मालूम है कि ज्ञानो की माँ की रुलाई की वजह क्या है और ज्ञानो के साथ क्या हुआ है। लोकलाज को बचाती हुई माँ अपनी ही बेटी को लाज से कम मानती है और यही पितृसत्तात्मक समाज का मूल चरित्र भी है।

इस लोकलाज ने बहुत-सी स्त्रियों को खत्म किया है। यह आज भी बदस्तूर जारी है। भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के तहत जिस स्त्री पर अत्याचार हुआ है उसकी पहचान उजागर करना दंडनीय अपराध है और इस जुर्म में दो साल की जेल तक की सजा हो सकती है। आखिर इतनी कठोर सजा का प्रावधान किस तरफ संकेत करता है? क्योंकि एक समाज के रूप में हम पीड़िता को दोषी ठहराते हैं और अपनी अंगुली से इशारे कर यह कहते हुए घृणित हँसी हँसते हुए कहते हैं, देखो... देखो... ये वही औरत है जिसका बलात्कार हुआ है... ये वही बदचलन है... इसी ने जरूर कुछ किया होगा तभी इसके साथ ये सब हुआ..! इसी तरह के तमाम ताने समाज एक पीड़ित को देता रहता है जिससे उसका जीवन किसी नरक से कम नहीं बन जाता। यही वजह है कि स्त्रियों को लेकर 'लोग क्या कहेंगे'एक कठिन स्थिति बनाती है। इसे हायपेशिया की कहानी से समझा जा सकता है।

सिकंदर महान ने अपने नाम से एक शहर बसाया था जिसका नाम एलेक्जेंड्रिया था। सिकंदर के मरने के बहुत समय बाद वहाँ के साम्राज्य में एक बुद्धिमान स्त्री हुई जिनका नाम हायपेशिया था। उनके समय में बहुत से छोटे-छोटे साम्प्रदायिक गुट थे जो अपने-अपने संप्रदाय को महान बताते थे और लोगों के बीच उनकी स्थापना किसी भी कीमत पर करना चाहते थे। ऐसे ही समाज में हायपेशिया गणितज्ञ, खगोलविद और दार्शनिक भी थी। कहा जाता है कि उनके पास अपनी खुद की लायब्रेरी भी थी। यह लायब्रेरी किताबों वाली नहीं वरन कागज को लम्बाई में फोल्ड कर लिखे हुए पत्रों की थी। उनसे विद्यार्थी पढ़ने आया करते थे। अपने विद्यार्थियों के बीच वे बहुत सम्माननीय थीं। वे दिन-रात और मौसम के बदलाव से लेकर सूर्य और चाँद की गति का अध्ययन भी करती थीं। अभिप्राय यह है कि वे साधारण महिला की छवि में कैद हो जाने वाली व्यक्तित्व नहीं थीं।

ऐसी बुद्धिमती स्त्री को समाज में उनके गुणों के लिए बदनाम किया जाने लगा। यह चर्चा लोगों के बीच में गहरी कर दी गई कि वे काला जादू जानती हैं और जादू के सहारे लोगों की बुद्धि का नाश कर देती हैं। हायपेशिया अपने बारे में उड़ने वाली इन अफवाहों से दूर खगोलशास्त्र में डूबी रहती थीं। पर एक दिन ऐसा भी आया जब उनकी बेरहमी से हत्या कर दी गई। हत्या के दिन वे अपनी बग्घी से कहीं जा रही थीं। तभी बीच रास्ते में उन्हें रोका गया। उन पर एक संप्रदाय को मानने का दबाव डाला गया जिसे उन्होंने सिरे से खारिज कर दिया। इसके बाद उनकी बेहद निर्मम हत्या कर दी गई। उनकी लायब्रेरी को जला दिया गया और वे गुमशुदा हो गई। उनकी यह दशा लोगों के कहने से ही की गई। क्योंकि वे स्त्री की परंपरागत छवि में फिट नहीं बैठती थीं।

अपने सामाजिक अर्थ और बोध में समाज एक संरचना से अधिक सत्ता भी है। यह सत्ता ही है कि बहुत से व्यक्ति और परिवार 'लोग क्या कहेंगे' के डर से अपने काम और व्यवहार में अंतर कर लेते हैं और समाजोन्मुखी बनने की फिक्र और कोशिश में अपनी जिंदगी गुजार देते हैं। मरकर भी समाज का भय नहीं जाता। बल्कि मरने के बाद समाज द्वारा दी जाने वाली चिंता मृत व्यक्ति के परिवारजनों को कचोट डालती है।

दार्शनिकों ने दुनिया को बहुत कुछ दिया है और मानव समाज अपने मानवीय जीवन को बेहद खूबसूरत बना सकता है। मानव को मानव रहने और दूसरों की बातों की परवाह न करने की सीख दार्शनिकों से जरूर लेनी चाहिए। ऐसी कहानी कही जाती है कि डायोजनिज नाम का एक बहुत बड़ा दार्शनिक दुनिया के महान विजेता सिकंदर के समय था। सिकंदर जो खुद को विश्व विजेता कहता था और जिसके नाम से अच्छे-अच्छे लोग पंक्तियों में पंक्तिबद्ध हो जाते थे। उसी के समय में यह दार्शनिक हुआ। उसका नाम और विचार सुनकर सिकंदर बहुत प्रभावित हुआ। वह मिलने चल दिया। कहते हैं, डायोजनिज उस समय लकड़ी के बैरल में रहा करते थे। जीवन फक्कड़ था। प्रकृतिजीवी थे। मिला कुछ तो ठीक न मिला तो भी ठीक। दार्शनिक बैरल में बैठकर सर्दियों की धूप का आनंद ले रहा था। सिकंदर उसके सामने जाकर खड़ा हो गया पर डायोजनिज पर इसका कोई असर नहीं हुआ। सिकंदर को लगा कि जब वह जाएगा तो झुककर सलाम करेगा। पर डायोजनिज नेऐसा कुछ नहीं किया। सिकंदर ने उसकी इस दशा को दयनीय मान पूछा, ''मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?'' डायोजनिज ने आँखें बंद किए हुए ही कहा, ''फिलहाल तुम धूप रोककर खड़े हो, सामने से हट जाओ ताकि मैं धूप का मजा ले सकूं।'' सिकंदर बिना कुछ कहे वापस लौट आया।

वास्तव में डायोजनिज कुछ ऐसे प्रकृतिवादी दार्शनिक होते हैं जो जीवन को बिना किसी ताम- झाम के जीते हैं और प्रकृति का पोषण पाकर जीवन को संवारते हैं। वे बेपरवाह होते हैं। उन्हें कोई मतलब नहीं होता कि उनके रहन-सहन अथवा उनके बारे में कौन क्या बातें कर रहा है। वे अपने जीवन में और बोध में खोए हुए लोग होते हैं। हमारे यहाँ कबीर और मीरा की वाणी में यही अक्स है। दोनों ही समाज की परवाह किए बिना जिए और भक्ति का आलाप किया। मीरा तो खुलकर कहती हैं कि उन्होंने कुल की लोकलाज को कृष्ण के प्रेम में तज दिया है। इसके दूसरी तरफ कबीर कहते हैं-

''साधो देखो जग बौराना
सांच कहो तो मारन धावै
झूठे जग पतियाना...''

यदि हम में खुद लोगों को निशाने पर लेने की आदत है अथवा किसी के बारे में कहने सुनने के लिए हम चौपाल का हिस्सा हैं तो इतना जान लेना चाहिए कि जिन शब्दों को हम बोल देते हैं वे वापस नहीं लिए जा सकते और जिन शब्दों को हम मौन के भीतर रखते हैं उनके हम मालिक होते हैं। अरबी कहावत है कि तुम अपने कहे हुए शब्दों के दास हो और न कहे हुए शब्दों के मालिक। हम कई बार बिना सोचे समझे कुछ भी बोल देते हैं और उससे कोई द्रवित होता है अथवा किसी को बहुत दुःख पहुँचता है। कई बार लड़ाई-झगड़ों की नौबत भी आ जाती है। कोशिश यही करें कि जबान के कच्चे न बनें। जो कहना-सुनना हो उसमें जागरूकता लाएं।

व्यक्ति के रूप में अपने रास्ते पर चलते हुए मेहनत से आगे बढ़ना इसका दूसरा पक्ष है। हमें मालूम होना चाहिए कि लोग कान के कच्चे तो हैं ही साथ ही जबान के भी कच्चे हैं। अमूमन लोग एक ऐसी दौड़ में शामिल हैं जहाँ सब शामिल हैं। वे इस दौड़ की वजह नहीं खोजते। वे इसका अर्थ भी नहीं जानना चाहते। बस, जहाँ सब दौड़ रहे हैं वे भी आँख मूँद दौड़े जा रहे हैं। इस दौड़ में शामिल होना अपने स्व को खो देने जैसा है। व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत रूप में वही अपनाना चाहिए जो उसके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सेहत के लिए अच्छा हो।

****